अमर उजाला

नई दिल्ली | मंगलवार, 18 जून 2019

प्रवाह

निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक

स्थापना वर्ष : 1948

हम केवल तभी जिंदगी के चमत्कार को पूरी तरह समझ पाएंगे, जब अप्रत्याशित घटनाओं को घटने देंगे।

- पाओलो कोएल्हो

ब्राजील के प्रसिद्ध उपन्यासकार

पिछले कार्यकाल के स्वच्छ भारत अभियान के बाद मोदी सरकार ने इस बार अगले पांच साल में हर घर तक पाइप लाइन के जरिये पानी पहुंचाने का जो लक्ष्य रखा है, जल संकट के मौजूदा परिदृश्य को देखते हुए उसका महत्व समझा जा सकता है।

नल से जल

नीति

आयोग की बैठक में प्रधानमंत्री मोदी ने 2024 तक हर घर तक पाइप लाइन के जरिये पानी पहुंचाने का लक्ष्य रखा है, जो कि उनके पिछले कार्यक्रम के दौरान शुरू किए गए स्वच्छ भारत अभियान की तरह की अत्यंत महत्वपूर्ण पहल है। खासतौर से मौजूदा परिदृश्य में जब देश के विभिन्न हिस्सों में जल संकट की स्थिति विकट होती जा रही है, इसका महत्व समझा जा सकता है। मसलन महाराष्ट्र के मराठवाड़ा और विदर्भ में मार्च के महीने से ही जल संकट की न केवल खबरें आ रही थीं, बल्कि वहां हजारों ग्रामीणों को उनके मवेशियों के साथ अस्थायी कैंपों में रहना पड़ रहा है। वस्तुतः देश के एक तिहाई (250) जिले पानी के संकट और सूखे से प्रभावित हैं, इनमें से कई जगहों पर लोगों को कई किलोमीटर दूर से पैदल चलकर पीने का पानी लाना पड़ता है। केंद्रीय जल आयोग की रिपोर्ट के मुताबिक देश के 91 में से 71 जलाशयों का स्तर चिंताजनक स्तर तक घट चुका है। ऐसा नहीं है कि पानी का यह संकट अचानक पैदा हो गया है, वास्तविकता यह है कि साल दर साल भू जल स्तर गिरता जा रहा है। जबकि करीब 80 फीसदी पीने के पानी और तकरीबन दो तिहाई खेती के लिए देश भू जल पर ही निर्भर है। दूसरी ओर अभी सिर्फ 16 फीसदी ग्रामीण घरों तक पाइप लाइन के जरिये पानी की आपूर्ति हो पाती है। सरकार अगले पांच साल में बाकी बचे 84 फीसदी घरों तक नल से जल पहुंचाना चाहती है। यहां उल्लेखनीय है कि स्वच्छ भारत अभियान को लोगों का व्यापक समर्थन मिला, लेकिन सरकारी मदद से शौचालयों के निर्माण के बावजूद पानी की कमी से इनके इस्तेमाल के प्रति कई जगह बेरुखी भी देखी गई है। जाहिर है, पाइप लाइन के जरिये घरों तक पानी पहुंचने से लोगों को सिर्फ पीने का ही पानी नहीं मिलेगा, बल्कि जहां कहीं खुले में शौच अब भी चुनौती बना हुआ है, उससे भी छुटकारा मिल सकेगा। हालांकि देश की एक अरब तीस करोड़ की आबादी और दूरस्थ क्षेत्रों की मुश्किलों को देखते हुए अगले पांच साल में हर घर तक पाइप लाइन से पानी पहुंचाना कोई आसान लक्ष्य नहीं है। ऐसे में जल संसाधनों का समुचित बंटवारा तो जरूरी होगा ही, जल संरक्षण और जल प्रबंधन के प्रति भी हमें जागरूक होना पड़ेगा।

अमरबेलों से जकड़ा वटवृक्ष

कांग्रेस के लिए यह कितना आत्मघाती है कि जिस उत्तर प्रदेश ने उसके तेवर में संघर्ष के सबसे ज्यादा बीजाणु गूंथे, वहां उसकी हालत चौथे नंबर की भी नहीं है।

कनक तिवारी, राजनीतिक विश्लेषक

लगता है, कांग्रेस को खुद पर लगी कीचड़ सुखाने का वक्त चाहिए। सैकड़ों बुद्धिजीवी सेनापति पैदा करने वाली इस उर्वर गर्भा पार्टी के पास करिश्माई नेतृत्व का संकट पैदा हो गया है। कांग्रेस के विरोधी उस पर सीधे-सीधे भले ही गलत आरोप लगाते हों, पर कांग्रेस के नेता भी बुनियादी मुद्दों से जी चुराकर बगलें झांकने की शक्ल में इतिहास के तर्कों का उत्तर न देने की गैर जिम्मेदाराना कोशिश करते हैं।

कांग्रेस इतिहास की एक बड़ी पार्टी जरूर है, पर अखंडित भूगोल की नहीं रही। यक्ष प्रश्न यह है कि कांग्रेस इतिहास के शाश्वत मूल्यों के अभिलेखागार के रूप में तो जीवित रहेगी, लेकिन समकालीन मूल्यों और भविष्य की चुनौतियों तक भारतीय जनमानस के विश्वास की जमानतदार क्या बनी रहेगी। कांग्रेस की लगातार हार के जो भी मुख्य कारण हों, उनमें धर्म और राजनीति की जुगलबंदी, गुटबाजी, अदूरदर्शी टिकट वितरण, भितरघात, बगावत जैसे कारण गिनाए जा सकते हैं। पिछले बरसों में कांग्रेस ने केंद्र तथा प्रदेश सरकारों में जिस तरह का नेतृत्व दिया, उससे जनमानस संतुष्ट नहीं रहा है। अब यह तर्क दिया जाता है कि बुद्धि के बदले कांग्रेस को कर्म के लोकप्रिय नेताओं की आवश्यकता है। बुद्धि और कर्म का आपस में क्या छत्तीस का आंकड़ा है? केंद्र और प्रदेश से लेकर जिला स्तर पर कांग्रेस के विचार विभागों में विचारों का स्पंदन महसूस नहीं होता।

आज भी पर्यवेक्षक यही बताने में मशगूल हैं कि कांग्रेस का अंदरूनी संकट फोड़े की तरह फूट रहा हो, तो उस पर सोनिया गांधी के हाथ ही मरहम लगा सकते हैं। कांग्रेस का यह कैसा तत्व है, जो नेहरू परिवार को कांग्रेस का कुतुबनुमा बनाए हुए है? 10, जनपथ की सुई जिस ओर सुस्थिर होगी, उत्तर वहीं होगा। चौकड़ियां अमरबेल की तरह लिपटी कांग्रेस नेतृत्व का रस चूस रही हैं। कांग्रेस उन सूबेदारों को क्या नहीं जानती, जिनके चेहरों की चाशनी तो बढ़ी है, लेकिन शरीर का नमक घटा है?

नेतागीरी जनता के बीच जाने के बदले अखबार के विज्ञापनों में सिमट गई। वह किसान के खेतों और कारखानों से निकलकर मंत्रियों के बंगलों के दीवानखानों में सहमी खड़ी रही। 'भ्रष्टाचार' शब्द ही कांग्रेस के शब्दकोश में कुछ लोगों द्वारा अप्रासंगिक बनाया जाने लगा। ऐसा नहीं कि कांग्रेस में संस्कारशील पीढ़ी का खात्मा हो गया, लेकिन जनता से जुड़े और बौद्धिक धरातल की आभा से मंडित कांग्रेस के ऐसे महत्वपूर्ण सिपाही नक्कारखाने में केवल तूती की आवाज बनकर रह गए। इतनी भयानक हार तो आपातकाल में उपजी कांग्रेस-विरोधी आंधी में भी नहीं हुई थी। कांग्रेस ने चुनावी संघर्षों में शर्मनाक पराजय केवल इस कारण नहीं झेली कि उसे मतदाताओं ने तिरस्कृत किया, बल्कि इसलिए ज्यादा झेली कि देश के मतदाताओं से कार्यकर्ताओं के जरिये उसका संपर्क संवादहीनता की हद तक मूक हो गया था। बीसवीं सदी के लोकतंत्रीय इतिहास में विश्व की सबसे बड़ी पार्टी कांग्रेस अपने अस्तित्व के संघर्ष से जूझती रही।

यही वक्त है, जब कांग्रेस को उसे उपलब्ध या ढूंढकर लाए गए विशिष्ट बुद्धिजीवियों और चरित्रनायकों को चुनाव के मैदान में उतारना चाहिए, भले उससे राजनीति के गैर-राजनीतिकरण की प्रक्रिया शुरू करनी पड़े। कांग्रेस केवल इस इतिहास बोध के सहारे गाफिल होकर नहीं रह सकती कि जिन लोगों ने आजादी की लड़ाई में अंग्रेजों की तरफदारी की, स्वाधीनता आंदोलन की पीठ पर छुरा घोंपा, अंग्रेज हुक्मरानों को चिट्ठियां लिखीं कि भारत को आजादी की आवश्यकता नहीं है, उनके राजनीतिक वंशज हिंदुस्तान की जनता के भाग्य का सूत्रधार बनने का ख्वाब पाल रहे हैं।

कांग्रेस के लिए यह कितना आत्मघाती है कि जिस उत्तर प्रदेश ने कांग्रेस के तेवर में संघर्ष के सबसे ज्यादा बीजाणु गूंथे, वहां उसकी हालत चौथे नंबर की भी नहीं है। जिस सेना को पार्टी का परचम लेकर चुनाव मैदान में मार्च करना है, उसमें कायदे के सैनिक तक नहीं हैं। गांवों के किसानों के बेटों के जत्थे कांग्रेस की सेवा करने में उस तरह मुस्तैद नहीं दिखाई पड़ते, जो आजादी के महासमर में कांग्रेस की यादें रही हैं। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक राष्ट्रीय राजनीतिक चिंतन मुख्यतः कांग्रेस की थाती रहा है। पूंजीपतियों, नौकरशाहों और व्यापारियों को कांग्रेस में पिछली सीट ही मिलती रही। धीरे-धीरे तिकड़मबाजों ने कांग्रेस से बुद्धिजीवियों को बीनने का काम शुरू किया।

नेतृत्व को लेकर सोनिया गांधी निस्संदेह वह 'फेविकोल' हैं, जिससे पूरी पार्टी के टूटते हाथ-पांव जुड़ जाते हैं। लेकिन कांग्रेस की आत्मा कहां है? स्वदेशी का विरोध, विचारों की सफाई, नेता-परिवारों की अभिवृद्धि, समाजवाद का खात्मा, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का समर्थन और पश्चिमी अपसंस्कृति के सामने समर्पण करने के बाद कांग्रेस और अन्य पार्टियों में क्या फर्क रह गया है?

देहाती गंध की गमक लिए लाखों कांग्रेसी कार्यकर्ता अब दरी बिछाने वालों की जमात में शामिल हैं। पराजय-विशेषज्ञ कांग्रेस की विजय की रणनीति बनाते हैं। जिन्होंने जीवन में कोई चुनाव नहीं लड़ा, जो अपने राज्य से एक वार्ड का चुनाव जीत नहीं पाते, जो लगातार हार रहे हैं, जो हारने के पुरस्कार स्वरूप राज्यसभा में आसानी से पहुंच जाते हैं, लेकिन दूसरों को नहीं जाने देते, जो अंतिम बार हार चुके हैं, ऐसे तत्व मिलकर कांग्रेस की जीत की गारंटी देते हैं।

कहां है कांग्रेस में विचार-विमर्श और असहमति की स्वीकार्यता? कांग्रेस कार्य समिति तथा प्रदेशों के शीर्ष नेताओं में अधिकांश ऐसे हैं, जिन्होंने कभी न कभी कांग्रेस छोड़ी है। इनमें से कई नेताओं ने तो इंदिरा गांधी तक को धोखा दिया है। इसके कुछ नेता निजी बयान भी देते हैं। कांग्रेस कार्यसमिति ने सर्वसम्मति से संसदीय पद्धति की सरकार के पक्ष में प्रस्ताव पारित किया है। फिर भी इसके कुछ मुख्यमंत्री और नेता खुलेआम राष्ट्रपति प्रणाली की सरकार के पक्ष में अपने मत व्यक्त करने में संकोच नहीं करते। कांग्रेस प्रवक्ताओं का तो यह आलम है कि वे दूसरी पार्टियों से ज्यादा अपनी पार्टी के विपरीत खेमे के नेताओं को निपटाने चलते हैं। कांग्रेस को सोचने की फुर्सत ही नहीं मिल रही है।

अंतर्ध्वनि

>> अमोस ओज

बचपन में मेरी इच्छा थी कि किताब की शक्ल में बड़ा होऊं

एक चीज जो हमारे यहां पर्याप्त थी, वह थी किताबें। एक दीवार से दूसरी दीवार तक ठंसी हुई, गलियारे और रसोई में- हर कहीं वे भरी पड़ी थीं। हजारों किताबें, घर के हर कोने में। मुझे लगता, लोग आते-जाते हों, जन्म लेते और मरते हों, मगर किताबों की कभी मौत नहीं होती। जब मैं छोटा था, तो मेरी यही इच्छा थी कि किताब की शक्ल में बड़ा होऊं- किताबें लिखनेवाला लेखक नहीं। लोग मक्खियों की तरह मर सकते हैं। लेखकों का मरना भी ऐसा खास मुश्किल नहीं। लेकिन किताबों का है :

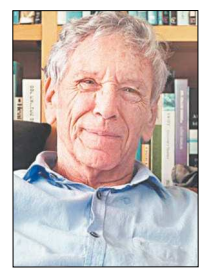

आप कितनी ही तरतीब से उन्हें खत्म करने की कोशिश करो, इसकी हमेशा गुंजाइश रहती है कि कहीं एक प्रति जिंदा बच जाए और किसी दूर-दराज, असामान्य-सी जगह की लाइब्रेरी के शेल्फ पर सुरक्षित पड़ी रहे। एक या दो बार जब कभी ऐसा हुआ कि घर में खाने को पैसे न हों, तब मां बाबा की तरफ देखतीं, और बाबा समझ जाते कि कुर्बानी का क्षण आ गया है और वह किताबों की अलमारी की ओर पलटते। वह नैतिक आदमी थे, और जानते थे कि रोटी की जगह किताबों से ऊपर है और बच्चे की बेहतरी सब चीजों से ऊपर है। मैं उनकी तकलीफ समझ सकता था। मेरे बाबा का अपनी किताबों से एक बेहद संवेदनशील रिश्ता था। किताबों की संगत में उन्हें एक जिस्मानी खुशी मिलती : भले दूसरों की किताबें हों, खुद को वह रोक नहीं पाते, आगे जाकर छू-टटोल लेना उन्हें जरूरी लगता। हर किताब की अपनी खास निजी, उत्तेजक महक होती। बाबा अमूमन एक या दो घंटे में वापस लौटते। किताबों की जगह भूरे कागज के थैले में रोटी, अंडे, चीज, और डिब्बाबंद मांस होता। पर कभी-कभी अपनी किताबें वह जरूर बेच आए होते, मगर उस कमी की भरपाई में उन्होंने तत्काल दूसरी किताबें खरीद ली होतीं, क्योंकि सेकेंडहैंड किताब की दुकान में किसी अनोखे खजाने पर उनकी निगाह पड़ी होती।

-इस्राइल के मशहूर लेखक

मंजिलें और भी हैं

>> भारतरत्न भार्गव

दृष्टिबाधित बच्चे भर रहे हैं जिंदगी में रंग

मैं जयपुर का रहने वाला हूं। हमेशा से ही मैं समाज के लिए कुछ अच्छा करना चाहता था। नाटक व साहित्य मेरे पसंदीदा विषय रहे हैं। पढ़ाई के बाद मैं राजस्थान विश्वविद्यालय में हिंदी का प्रोफेसर रहा, उसके बाद ऑल इंडिया रेडियो दिल्ली चला गया। वहां कुछ वर्ष काम करने के बाद मैं बीबीसी लंदन चला गया। लंदन से वापस आने पर संगीत, नाटक अकादमी में सेवाएं देने लगा। जब वहां से मैं सेवानिवृत्त हुआ तो मेरे मन में गरीब, अनाथ व असहाय बच्चों की मदद करने का विचार आया।

मैं जयपुर वापस आ गया। शुरू में मैंने कुछ बच्चों की मदद करनी शुरू की, पर वह गरीबी का दिखावा कर रहे थे, तो मैंने उनकी मदद बंद कर दी। फिर जयपुर के कोठारी परिवार (जो हीरों का व्यवसाय करते हैं) ने मुझसे कहा कि, गरीब बच्चों के साथ आप काम नहीं कर पाए, पर चाहें तो दृष्टि बाधित बच्चों के साथ काम कर सकते हैं। उन्होंने 'राजस्थान नेत्रहीन कल्याण संघ' से मेरा परिचय करवाया। चूंकि मैं रंगमंच में भी सक्रिय था, तो उनके द्वारा संचालित एक स्कूल में मैंने बच्चों के साथ मुंशी प्रेमचंद के एक नाटक का प्रयोग किया, जो सफल रहा। नाटक खत्म होने के बाद बच्चों ने मुझसे कहा, कि वे मेरे साथ रहना और काम करना चाहते हैं। उसके बाद मैंने कोठारीगढ़ में उन्हीं बच्चों को साथ लेकर नाट्यकुलम की शुरुआत कर दी। मेरे लिए इन बच्चों के साथ यह सफर आसान नहीं रहा। अभिनय, संगीत, सुर-लय-ताल का ज्ञान हासिल करना हम दृष्टि संपन्न लोगों के लिए क्या आसान होता है? और उस पर अगर दृष्टि बाधित को यह प्रशिक्षण देना हो तो? एक बार मंच पर प्रवेश के बाद किरदार किस दिशा में जाएंगे, किस स्थान पर उन्हें संवाद बोलना है या मंच से प्रस्थान की दिशा को वे कैसे जानेंगे, जैसी अनेक समस्याएं थीं? मुझे उन बच्चों को अभिनय सिखाना था, पर उन्हें कुदरती खूबसूरती का आभास नहीं होता और वे वस्तुओं के आकार से भी नावाकिफ होते हैं। ऐसे में हमने तय किया हम ऐसा नाटक इन बच्चों को सिखाएंगे, जिसमें मूल मानवीय संबंधों के मार्मिक प्रसंग जुड़े हों, ऐसा प्रसंग जिससे वे खुद को जुड़ा महसूस कर सकें, मुक्ति का अनुभव कर सकें। आपके पास इरादों की पूंजी हो तो आगे का रास्ता खुद-ब-खुद खुलता चला जाता है। दिव्यांग कलाश्रम के बैनर तले ज्यादातर नाटक संगीतात्मक रहे हैं। मंच पर कहां से प्रवेश कर किस तरफ बढ़ना है, कहां से मंच छोड़ना है या कब-किस तरफ मुड़ना है, इन तमाम निर्देशों के लिए वॉयस प्रॉम्पटिंग का सहारा लिया जाता है। मैंने इन बच्चों के साथ काम करते हुए पाया कि गंध को लेकर ये बेहद संवेदनशील होते हैं, स्पर्श की जुबान समझते हैं। इसलिए जरूरी होता है, इनके साथ काम करने से पहले इनका मनोविज्ञान समझना। यह दुखद है कि ऐसी कोई एक राष्ट्रीय संस्था नहीं है, जहां इन बच्चों के रंगमंच का अनुभव प्रदर्शित किया जा सके। नाट्यकुलम में दृष्टि बाधितों को अभिनय के गुर सिखाने के अलावा ब्रेल लिपि के माध्यम से इनकी पढ़ाई व उनके आंखों के इलाज का बंदोबस्त भी किया जाता है। इसके लिए फंड का इंतजाम मैं अपनी पेंशन से करता हूं, साथ ही मेरे बच्चे व कुछ दोस्त मेरा सहयोग करते हैं। मैं अस्सी बरस का हो चुका हूं, पर इन बच्चों की मेहनत व प्रदर्शन देखकर हमेशा उत्साहित रहता हूं। अब गर्मियों की छुट्टियों में इन बच्चों के लिए एक माह की थियेटर वर्कशॉप चालू हो चुकी है। मैं देश के अन्य हिस्सों में मौजूद गरीब दृष्टि बाधित बच्चों के परिजनों से कहना चाहूंगा कि, वे बच्चों को लेकर मेरे पास आएं। मैं उन्हें रंगमंच के प्रशिक्षण के साथ शिक्षित करूंगा, ताकि वे जिंदगी के जिस रंग को देख नहीं पा रहे, उसे महसूस तो कर सकें।

मैं अस्सी बरस का हो चुका हूं, पर इन बच्चों की मेहनत व प्रदर्शन देखकर हमेशा उत्साहित रहता हूं।

सत्रहवीं लोकसभा का भविष्य

राजनीति के टकराव के माहौल में भी सोलहवीं लोकसभा ने जैसे कानून बनाए, उससे यह उम्मीद है कि सब कुछ नष्ट नहीं हुआ है। देश चाहेगा कि संसद बहस तथा विधेयक पारित करने के अपने मूल चरित्र की ओर लौटे तथा दलीय राजनीति का अड्डा न बने।

अवधेश कुमार

सत्रहवीं लोकसभा का सत्र आरंभ हो गया है। सोलहवीं लोकसभा से एकदम आमूल अंतर तो नहीं आया है, पर इस बार तस्वीर थोड़ी अलग होगी। हो सकता है कि इस बार लोकसभा का चित्र थोड़ा भिन्न हो। सोलहवीं लोकसभा के अंतिम दो वर्षों में राजनीति इतनी हावी हो गई थी कि अनेक महत्व के मसले बहस से वंचित रह गए।

सबसे पहले सत्रहवीं लोकसभा की अंतःरचना को समझते हैं। इस बार आधे से अधिक यानी 277 सांसद पहली बार संसद पहुंचे हैं। इसमें भाजपा अध्यक्ष व केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह भी शामिल हैं। इस बार लोकसभा में सांसदों की औसत उम्र 54 साल है। इनमें 25 से 40 वर्ष की उम्र के करीब 12 प्रतिशत सांसद हैं। 40 से 55 साल के करीब 41 प्रतिशत सांसद हैं। 56 से 70 साल के 42 प्रतिशत सांसद लोकसभा पहुंचे हैं। 70 साल से अधिक उम्र के केवल छह प्रतिशत सांसद ही हैं। इस बार लोकसभा में महिला सांसदों की कुल संख्या 78 है। इसलिए हो सकता है महिला आरक्षण का मामला इस बार सबसे ज्यादा गरमाए।

इस बार स्नातक तक पढ़े 394 लोग संसद पहुंचे हैं। 39 प्रतिशत सांसदों ने स्वयं को राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ता बताया है। यानी प्रोफेशनल राजनीति के दौर में ये पूर्णकालिक राजनीतिक लोग हैं। हालांकि लंबे समय से लोकसभा का चेहरा बने कई बड़े नेता इस बार नहीं होंगे, जिनमें भाजपा के लालकृष्ण आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी, सुमित्रा महाजन, सुषमा स्वराज, हुकुमदेव नारायण यादव, पूर्व प्रधानमंत्री एच.डी. देवेगौड़ा आदि शामिल हैं। ये सारी स्थितियां लोकसभा की कार्यवाही पर असर डालेंगी।

सोलहवीं लोकसभा में 133 विधेयक पास हुए, जो पिछली लोकसभा से 15 प्रतिशत ज्यादा थे। 16 वीं लोकसभा के कार्यकाल में राज्यसभा ने भी कई ऐतिहासिक काम किए। वर्षों से लटके वस्तु एवं सेवा कर यानी जीएसटी को मूर्त रूप दिया जा सका। गरीबों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण का कानून बना। करीब 1,400 अप्रासंगिक कानूनों को खत्म किया गया। भ्रष्टाचार के विरुद्ध आर्थिक अपराधी भगोड़ा कानून, बेनामी कानून से लेकर भ्रष्टाचार निरोधक कानून में संशोधन, आयकर कानून में बदलाव, रियल्टी सेक्टर के नियमन के लिए रेरा तथा नाबालिग बच्चियों एवं बच्चों के खिलाफ यौन अपराध में फांसी की सजा जैसे कानून इसी संसद की देन हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि राजनीति के टकराव के माहौल में भी सोलहवीं लोकसभा एवं इस दौरान की राज्यसभा ने जैसे कानून बनाए, उससे यह उम्मीद कायम है कि सब कुछ नष्ट नहीं हुआ। इस पृष्ठभूमि में सत्रहवीं लोकसभा एवं इस काल की राज्यसभा के भविष्य को लेकर मिश्रित तस्वीर सामने आती है। पता नहीं, कांग्रेस अपनी पराजय के बाद क्या रणनीति अपनाएगी? कांग्रेस कह रही है कि हमारी लड़ाई विचारधारा की थी और है। सवाल है कि वह यह लड़ाई संसद में कैसे लड़ेगी! लोकसभा में आंध्र से वाईएसआर कांग्रेस विपक्ष के साथ नहीं जाएगी। बीजद की नीति सरकार के विरुद्ध न आक्रामकता की थी, न होगी। पांच साल बाद संसद में पहुंचा द्रमुक सरकार के खिलाफ कितना आक्रामक होगा, कहना कठिन है। तृणमूल की संख्या घटी है, किंतु बंगाल की राजनीतिक लड़ाई के आलोक में वह सरकार को परेशान करने में कोई कसर नहीं छोड़ेगी। इसी तरह बसपा भी सरकार के विरुद्ध रहेगी। लेकिन सरकार के पास जितना बड़ा संख्या बल है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि भाजपा सधी हुई रणनीति अपनाएगी। देश चाहेगा कि संसद बहस, प्रश्नोत्तर तथा विधेयक पारित करने के अपने मूल चरित्र की ओर लौटे तथा दलीय राजनीति का अड्डा न बने।

खुली खिड़की

वस्त्र निर्यातिक देश

दुनिया के कई सारे देश वैश्विक स्तर पर वस्त्र का निर्यात करते हैं। 2017 में आई एक रिपोर्ट के मुताबिक विश्व में वस्त्र का सबसे बड़ा निर्यातक चीन है।

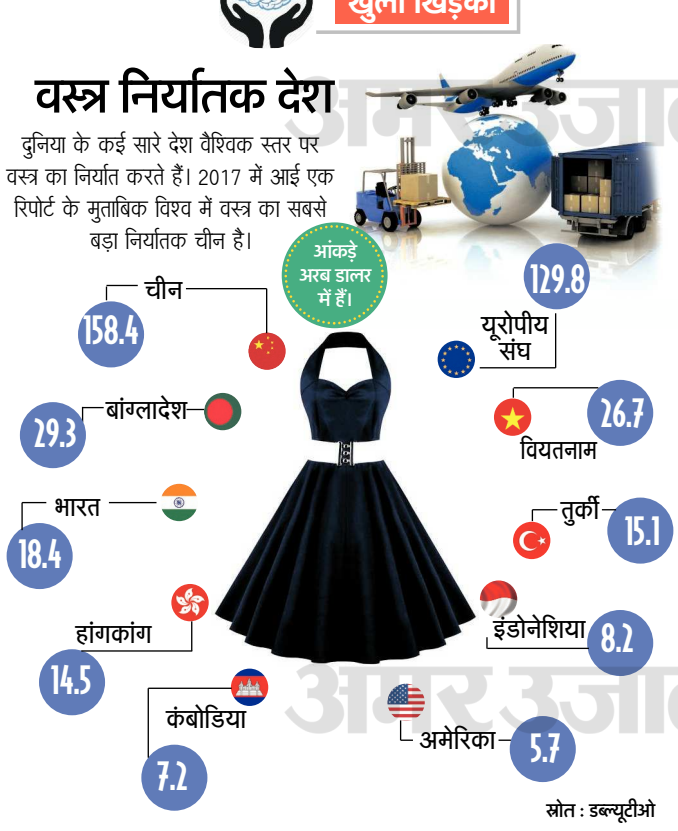

स्रोत : डब्ल्यूटीओ

शिवाजी की एकनिष्ठा

सत्संग

समर्थ गुरु स्वामी रामदास छत्रपति शिवाजी महाराज से बहुत प्रेम करते थे। शिष्य सोचते थे कि उन्हें शिवाजी से उनके राजा होने के कारण ही अधिक प्रेम है। एक दिन स्वामी रामदास शिष्य मंडली के साथ जंगल से जा रहे थे कि रात्रि हो गई। उन्होंने एक गुफा में डेरा डाला। थोड़ी ही देर में गुरु के कराहने की अवाज आने लगी। शिष्यों ने कराहने का कारण पूछा, तो उन्होंने उदर शूल बताया। शिवाजी ने पूछा, महाराज क्या इसकी कोई दवा नहीं। गुरु बोले, इसका एकमात्र उपाय है सिंहनी का ताजा दूध, किंतु वह तो दुष्प्राप्य है। शिवाजी गुरुदेव का तुंबा उठाकर सिंहनी की खोज में निकल पड़े। कुछ दूर में उन्हें एक गुफा में सिंहनी की गर्जना सुनाई दी। आगे जाने पर उन्हें एक सिंहनी दो शावकों के साथ दिखाई दी। वह उसके पास गए और हाथ जोड़कर बोले, मां मैं तुम्हें मारने नहीं आया हं। गुरुदेव अस्वस्थ हैं और उन्हें तुम्हारे दूध की जरूरत है। उनके स्वस्थ होने पर तुम मुझे खा लेना। सिंहनी उनके पैर चाटने लगी। मौका देख शिवाजी ने दूध निचोड़कर तुंबा भर लिया और गुरु के पास आ गए। दूध लाया देख स्वामी रामदास बोले, धन्य हो शिवा! उदर शूल तो बहाना था। मैं तो तुम सबकी परीक्षा ले रहा था। तुम उसमें सफल हुए। तुम्हारे जैसा एकनिष्ठ शिष्य हो, तो उसके गुरु को कभी कोई पीड़ा नहीं हो सकती।

-संकलित

हरियाली और रास्ता

रॉनी, मनु और हाथी की कहानी

मनु की मां ने हाथी की कहानी के जरिये रॉनी की मां की सोच बदलने में मदद की।

रॉनी और मनु अच्छे दोस्त थे। मनु पढ़ाई में अव्वल था, पर रॉनी पिछड़े बच्चों में गिना जाता था। एक दिन रॉनी और मनु की मम्मी बैठकर बातें कर रही थीं। रॉनी की मम्मी बोलीं, मनु पढ़ाई में बहुत अच्छा है। हो भी क्यों न, उसके पिता बेहद पढ़े-लिखे और अमीर हैं। मैं तो रॉनी को कितना समझाती हूं कि मनु से मुकाबला मत कर। जब तेरे मां-बाप ही पढ़े लिखे नहीं हैं, तो तू अकेले क्या कर लेगा। न तेरा परिवार तेरी अच्छी ट्यूशन लगा सकता है। मनु की मम्मी को यह सुनकर बुरा लगा। वह रॉनी की मम्मी से बोलीं, मैं आपकी बात से सहमत नहीं। रॉनी मेहनती लड़का है और वह जल्दी ही सब सीख लेगा। वह हमेशा ऐसा ही नहीं रहेगा। आपको उसे प्रोत्साहित करना चाहिए। तभी तो वह बेहतर करेगा। रॉनी की मम्मी ने कहा, यह आपका बड़प्पन है। पर सच को कोई बदल नहीं सकता। मनु की मम्मी बोलीं, हाथी जैसे विशाल जानवर को बांधने के लिए एक पतली-सी रस्सी ही काफी होती है। क्या हाथी में इतनी क्षमता नहीं होती कि वह उस रस्सी को तोड़ दे? पर वह रस्सी तोड़ने की कोशिश कभी नहीं करता, क्योंकि बचपन से ही उस रस्सी से बांधा जाता है। चूंकि बचपन में वह उस रस्सी को तोड़ नहीं पाता, इसलिए उसे लगता है कि बड़े होकर भी वह उस रस्सी को नहीं तोड़ पाएगा। यह सिर्फ हाथियों पर नहीं, इंसानों पर भी लागू होता है। मां-बाप बचपन में ही अपने बच्चों के मन को एक सीमा से बांध देते हैं। अगर मां-बाप बचपन से ही बच्चों को प्रोत्साहित करते रहें, तो स्थिति बदल सकती है। हमें भी रॉनी की पढ़ाई की फिक्र होती है। पर हम इसका ख्याल रखते हैं कि डांटने या हतोत्साहित करने के बजाय उसे प्रोत्साहित किया जाए। आप अपना नजरिया बदलिए, रॉनी का भविष्य भी सुनहरा हो जाएगा।

बच्चों के प्रति खराब धारणा बनाने के बजाय उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए।